



उच्च न्यायालय इलाहाबाद

लखनऊ

आपराधिक अपील संख्या - 1895 / 2004

अज़मत @ ज़हूर @ जट्टू एवं एक अन्य

..... अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

..... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता

: राज नारायण रस्तोगी, अनुराग एस. कालेश

प्रतिवादी के अधिवक्ता

: शासकीय अधिवक्ता

न्यायालय संख्या - 28

माननीय न्यायमूर्ति प्रमोद कुमार श्रीवास्तव

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

1. वादों की सूची दोहराई गई तथा वाद को दूसरी पुकार में सुना जा रहा है।
2. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना गया।
3. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 374 (2) के अंतर्गत यह अपील, विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी अधिनियम), लखनऊ की न्यायालय के दिनांक 23.08.2004 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध की गई है। यह निर्णय, सत्र परीक्षण सं. 1016/1998 में अपराध सं. 124/1997, थाना-ठाकुरगंज, जिला-लखनऊ में दिया गया था। इस निर्णय में अपील करने वाले सलीम उर्फ कल्लू उर्फ कालिया को भारतीय दंड संहिता की धारा 323/34 के अंतर्गत एक महीने की कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है, भारतीय दंड संहिता की धारा 324/34 के अंतर्गत तीन महीने की कठोर कारावास की सजा तथा 2000 रुपये का जुर्माना एवं जुर्माना न देने पर दो महीने की अतिरिक्त कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है और एससी/एसटी अधिनियम [अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989] की धारा 3(1)(भ) के तहत छह महीने की कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है। सभी सज़ाएँ एक साथ चलेंगी तथा कारागार में पहले बिताई गई अवधि को दी गई सज़ा में समायोजित किया जाएगा।
4. अभियोजन पक्ष के अनुसार, मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 26 मार्च 1997 को रात लगभग 9:00 बजे, जब शिकायतकर्ता अमरीश कुमार सोनकर, ठाकुरगंज चौराहे से घर लौट रहा था, तो अहमदगंज पजावा तिराहे के पास उसे रोक लिया गया। अपीलकर्ता-अभियुक्त, सलीम उर्फ कालिया तथा उसका पिता अज़मत उर्फ झुर, कथित तौर पर डंडों से लैस होकर घात लगाए बैठे थे, उन डंडों से "फरसा" जुड़ा हुआ था। उन्होंने शिकायतकर्ता पर हमला किया, जिससे उसके सिर और कंधे पर धारदार हथियार के घाव सहित कई

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

चोटें आईं, जिसके कारण उसे सात दिनों के लिए बलरामपुर चिकित्सालय में भर्ती रहना पड़ा। बताया जाता है कि यह झगड़ा, शिकायतकर्ता के भाई के दामाद की घोड़ा-गाड़ी (तांगा) छीनने को लेकर हुई पिछली कहासुनी से शुरू हुआ था। घटना की जानकारी शिकायतकर्ता ने घटना वाली रात को ही थाना-ठाकुरगंज, लखनऊ में दी थी, जिसके बाद रात 10:00 बजे अज़मत तथा सलीम के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 323, 504, 506 और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)(भ) के अंतर्गत प्राथमिकी सं. 82/97 दर्ज की गई।

5. अन्वेषण के दौरान अन्वेषण अधिकारी ने घटनास्थल का दौरा किया तथा नक्शा-नज़री तैयार किया। हालांकि, जैसा कि अपील के आधार पर बताया गया है, अन्वेषण अधिकारी को विचारण न्यायालय में परीक्षण के लिए पेश नहीं किया गया, जिससे बचाव पक्ष को नक्शा-नज़री एवं गवाहों के बयानों के बारे में उनका प्रतिपरीक्षण करने का मौका नहीं मिला। अन्वेषण के बाद, अज़मत उर्फ झुर और सलीम उर्फ कल्लू के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 323, 324, 504, 506 तथा एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)(भ) के अंतर्गत आरोप पत्र पेश किया गया।
6. विचारण न्यायालय ने दोनों अभियुक्तों, अज़मत और सलीम के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 323/34, 324/34, 504, 506 और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)(भ) के अंतर्गत आरोप तय किए। अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों से इनकार किया तथा विचारण (ट्रायल) की मांग यह कहते हुए की कि उन्हें झूठा फंसाया गया है।
7. अपना मामला सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष ने पाँच साक्षियों का परीक्षण किया :
अभियोजन साक्षी-1 अमरीश कुमार सोनकर (शिकायतकर्ता), अभियोजन साक्षी-2 सतीश

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

सोनकर, अभियोजन साक्षी-3 राम चौधरी (प्रधान सिपाही [हेड कांस्टेबल]), अभियोजन साक्षी-4 राकेश उर्फ पप्पू और अभियोजन साक्षी-5 डॉ. ए.के. नैयर। प्रलेखी साक्ष्य के तौर पर, अभियोजन पक्ष ने तहरीर (प्रदर्श क-1), प्राथमिकी (प्रदर्श क-2), सामान्य दैनंदिनी प्रविष्टि (प्रदर्श क-3) तथा चिकित्सकीय जांच आख्या (प्रदर्श क-5) दाखिल की।

8. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य समाप्ति के पश्चात, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के बयान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत दर्ज किए गए। विचारण न्यायालय ने दोषी ठहराए जाने वाली परिस्थितियों के बारे में बताया, जिनसे अपीलकर्ताओं ने इनकार किया और खुद को निर्दोष बताया। खास बात यह है कि अपीलकर्ता सलीम ने घटना के समय (1997) अपनी उम्र बताई थी ताकि वह नाबालिग साबित हो सके, लेकिन विचारण न्यायालय ने कथित तौर पर इस बात को नज़रअंदाज़ कर दिया।
9. इसके बाद, विद्वान विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं को सुना तथा संपूर्ण साक्ष्य, मौखिक एवं प्रलेखी की सराहना करते हुए अभियुक्त/अपीलकर्ता सलीम उर्फ कालिया को दोषी पाया और उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के साथ धारा 34 के अंतर्गत एक महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई, भारतीय दंड संहिता की धारा 324 के साथ धारा 34 के अंतर्गत तीन महीने की कठोर कारावास तथा 2000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(1)(भ) के तहत छह महीने की कठोर कारावास की सजा सुनाई। न्यायालय ने कहा कि सभी सज़ाएँ एक साथ चलेंगी तथा आगे यह भी कहा कि जुर्माना न देने पर, अपीलकर्ता को दो महीने की अतिरिक्त कठोर कारावास की सजा काटनी होगी।
10. आक्षेपित निर्णय एवं दोषसिद्धि के आदेश से व्यथित एवं असंतुष्ट होकर, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने इस न्यायालय में यह अपील की है।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

11. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि हालांकि उन्होंने दोषसिद्धि के निर्णय और दंड के आदेश के विरुद्ध अपील की है, लेकिन इस स्तर पर, वह सिर्फ दंड के संबंध में अपील करना चाहते हैं तथा गुण के आधार पर अपील नहीं करना चाहते हैं।
12. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि उत्तर प्रदेश राज्य की स्वयं की स्थानीय परिवीक्षा विधि है, यानी उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938 । उन्होंने आगे कहा कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (केंद्रीय अधिनियम) (जिसे आगे 1958 का अधिनियम कहा जाएगा) उत्तर प्रदेश राज्य में भी लागू होता है, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2017) 2 एससीसी 198** के मामले में कहा था। इस तरह, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि किसी भी अधिनियम में लाभ देना, न्यायालय का विवेकाधिकार है।
13. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि घटना लगभग 29 साल पहले (1997) हुई थी और अपीलकर्ता की उस घटना से पहले या बाद में कोई आपराधिक पृष्ठभूमि नहीं है। यह दलील दी गयी है कि लंबे विचारण (ट्रायल) और मौजूदा अपील के लंबे समय तक लम्बित (2004 से) रहने से अपीलकर्ता को उसके शीघ्र विचारण के बुनियादी अधिकार से असल में वंचित कर दिया है। यह देखते हुए कि अपीलकर्ता ने पहली बार अपराध किया है और उसे पहले कोई सज़ा नहीं हुई थी, विचारण न्यायालय को उसे अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ देना चाहिए था, जैसा कि सह-अपीलकर्ता अज़मत को दिया गया था। यह भी दलील दी गयी है कि यह माननीय न्यायालय, न्याय के हित में जीवित अभियुक्त-अपीलकर्ता सलीम को 1958 के अधिनियम का लाभ देने पर विचार कर सकता है।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

14. दूसरी तरफ, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने अपील का विरोध किया और दलील दी कि विचारण न्यायालय द्वारा कोई भी भौतिक अनियमितता या अवैधता नहीं की गई है तथा अभिलेख (रिकॉर्ड) में मौजूद साक्ष्यों को देखते हुए, अभियुक्त-अपीलकर्ता को सही दोषी ठहराया गया है।
15. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि 1958 के अधिनियम की धारा 4 का लाभ अभियुक्त-अपीलकर्ता को कुछ शर्तों पर दिया जा सकता है, जैसा कि 1958 के अधिनियम की धारा 4 में बताया गया है।
16. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलील पर विचार करने से पहले, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 3 और 4 को उद्धृत करना जरूरी है :

3. कतिपय अपराधियों को भर्त्सना के बाद छोड़ देने की न्यायालय की शक्ति -

"जहां कोई व्यक्ति भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 379 या धारा 380 या धारा 381 या धारा 404 या धारा 420 के अधीन दण्डनीय कोई अपराध करने का दोषी पाया जाता है या भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य विधि के अधीन दो वर्ष से अनधिक अवधि के लिए कारावास या जुर्माने अथवा दोनों से दण्डनीय कोई अपराध करता है और उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि, सिद्ध नहीं होती है तथा जिस न्यायालय ने उस व्यक्ति को दोषी पाया है, उसकी राय है कि मामले की परिस्थितियों को, जिसमें अपराध की प्रकृति तथा अपराधी का चरित्र भी शामिल है, ध्यान में रखते हुए ऐसा करना सही है, तो उस समय लागू किसी अन्य विधि में किसी भी बात के बावजूद, न्यायालय उसे धारा 4 के तहत कोई दण्ड देने या सदाचरण की परिवीक्षा पर छोड़ देने के बजाय, उसे सम्यक भर्त्सना के पश्चात छोड़ सकेगा।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

स्पष्टीकरण - इस धारा के उद्देश्य के लिए किसी व्यक्ति के विरुद्ध पूर्व दोषसिद्धि में, इस धारा या धारा 4 के अधीन उसके विरुद्ध दिया गया कोई भी पूर्व आदेश शामिल होगा।

4. कतिपय अपराधियों को सदाचरण की परीक्षा पर छोड़ने की न्यायालय की

शक्ति - (1) जब कोई व्यक्ति ऐसा कोई अपराध करने का दोषी पाया जाता है, जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दण्डनीय नहीं है और जिस न्यायालय ने उस व्यक्ति को दोषी पाया है, उसकी राय है कि मामले की परिस्थितियों को, जिसमें अपराध की प्रकृति तथा अपराधी का चरित्र भी शामिल है, ध्यान में रखते हुए ऐसा करना सही है, तो उस समय लागू किसी भी अन्य विधि में किसी भी बात के बावजूद, न्यायालय उसे तुरंत दंडित करने के बजाय, यह निर्देश दे सकता है कि उसे प्रतिभुओं सहित या उनके बिना, ऐसा बंधपत्र देने पर छोड़ दिया जाये कि वह तीन वर्ष से अनधिक की ऐसी कालावधि के दौरान, जैसा की न्यायालय निर्दिष्ट करे, आहूत किये जाने पर उपस्थित होगा और दण्डादेश प्राप्त करेगा तथा इस बीच परिशान्ति कायम रखेगा और सदाचारी रहेगा :

परन्तु न्यायालय किसी अपराधी को ऐसे छोड़ दिए जाने का निर्देश तब तक नहीं देगा, जब तक उसे यह यकीन न हो जाए कि अपराधी या उसके प्रतिभू, यदि कोई हो, का उस स्थान पर कोई नियत निवास स्थान या उस स्थान में कोई नियमित उपजीविका है, जिस पर वह न्यायालय अधिकारिता का प्रयोग करता है या जिसमें अपराधी के उस कालावधि के दौरान रहने की संभाव्यता है जिसके लिए वह बंधपत्र देता है।”

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

17. 1958 के अधिनियम की धारा 4 तब लागू होती है, जब कोई व्यक्ति ऐसे अपराध करने का दोषी पाया जाता है जिसका दण्ड न तो आजीवन कारावास है और न ही मृत्यु है। न्यायालय ऐसे अभियुक्त को धारा में बताए गए बंधपत्र पर सदाचार की परिवीक्षा पर छोड़ सकता है। इस धारा के प्रावधानों को लागू करते समय न्यायालय का अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने से पूर्व मामले की परिस्थितियों, अपराधी के चरित्र तथा अपराध की प्रकृति पर भी विचार करना आवश्यक है।
18. जहां तक अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की 1958 के अधिनियम के धारा 4 का लाभ देने की प्रार्थना का प्रश्न है, तो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बताए गए विधिक स्थिति तथा विधि पर चर्चा करना ज़रूरी है।
19. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **रतन लाल बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1965 एससी 444** में, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के उद्देश्य एवं प्रयोजन पर चर्चा करते हुए, प्रस्तर संख्या 4 में यह कहा :-

“4. यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार के आधुनिक उदारवादी प्रवृत्ति की तरक्की में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत की पहचान का नतीजा है कि फौजदारी विधि का उद्देश्य, किसी अपराधी को दण्ड देने से ज़्यादा उसे सुधारना है। मोटे तौर पर यह अधिनियम 21 वर्ष से कम उम्र के अपराधियों तथा उससे ज़्यादा उम्र के अपराधियों और उन अपराधियों में फर्क करता है, जिन्होंने मृत्यु या आजीवन कारावास के दण्ड वाला अपराध कारित किया है एवं जो कम गंभीर अपराध के दोषी हैं। जबकि 21 वर्ष से ज़्यादा उम्र के अपराधियों के मामले में, न्यायालय को यह पूरी छूट है कि वह उनकी भर्त्सना करके या सदाचार की परिवीक्षा पर छोड़ दे, जो अधिनियम के उपयुक्त प्रावधान में दी गई

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

शर्त के अधीन हो। 21 वर्ष से कम उम्र के अपराधियों के मामले में, न्यायालय को यह आदेश दिया जाता है कि वह उन्हें कारावास की सज़ा न दे, जब तक कि मामले की परिस्थितियां को देखते हुए वह इस बात से संतुष्ट न हो जाएँ; जिसमें अपराधियों के अपराध की प्रकृति तथा उनका चरित्र शामिल है। अधिनियम की धारा 3 और 4 के तहत उनसे निपटना वांछनीय नहीं है।”

20. इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **वेद प्रकाश बनाम हरियाणा राज्य (1981)**

1 एससीसी 447 : एआईआर 1981 एससी 643 के मामले में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 और अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के पालन के संबंध में पीठ तथा बार (अधिवक्ता संघ) के कर्तव्यों पर चर्चा करते हुए, निम्नानुसार प्रसन्नता जताई :-

"जिस अपराध के लिए दण्डित किया गया है, वह ऐसा है जिस पर धारा 360 या कम से कम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 लागू होगा। हमारे समक्ष जो सामग्री है, वह अधूरी है क्योंकि विचारण न्यायालय ने दण्ड देने का कार्य लापरवाही से किया है। हमें इस बात पर ज़ोर देना चाहिए कि किसी अभियुक्त को दण्ड देना समझदारी का कार्य है, न कि कोई नियमित या यांत्रिक नुस्खा। विचारण न्यायालय को इस परिस्थिति में न्यायोचित दण्ड देने के लिए सहायता हेतु आवश्यक सामग्री इकट्ठा करनी चाहिए थी। अपराध करने वाले की सामाजिक पृष्ठभूमि तथा व्यक्तिगत हालात बहुत ज़रूरी हैं, हालांकि असल में फौजदारी न्यायालय ने अपराधी के सामाजिक पृष्ठभूमि तथा व्यक्तिगत हालात पर शायद ही ध्यान दिया हो। भले ही दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 लागू न हो, यह

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

दण्ड देने वाले न्यायालय का कर्तव्य है कि वह पुनर्वास के नज़रिए से दण्ड पर असर डालने वाले तथ्यों को इकट्ठा करने के लिए क्रियाशील हो। इस मामले में ऐसे सामग्री की कमी है। हमें अधिवक्ता से भी बहुत कम मदद मिली। असल में, बार के सदस्य भी इन विधिक नियमों पर ठीक से ध्यान नहीं देते हैं, जो किसी अपराधी से इस तरह निपटने से जुड़े हैं कि वह गैर-अपराधी बन जाए। हम इस बात पर इसलिए ज़ोर देते हैं क्योंकि दण्ड में सुधार से जुड़े विधि को 'लघु अधिनियम' माना गया है तथा इसलिए उनका कोई खास महत्व नहीं है। यह पूरी तरह से गलत तरीका है और अगर बार मदद नहीं भी करता है, तो पीठ (बेंच) को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम जैसे विधि में शामिल दण्ड देने के मानवीय उद्देश्य को पूरा करना चाहिए।”

21. यह भी ध्यान देने वाली बात है कि इस माननीय न्यायालय ने **सुभाष चंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2015 विधिक वाद (इलाहाबाद) 1343** के मामले में, परिवीक्षा की विधि को लागू करने तथा उपयुक्त मामलों में अभियुक्तों को लाभदायक विधि का लाभ देने की ज़रूरत पर ज़ोर दिया है। इस न्यायालय ने सभी विचारण न्यायालयों तथा अपीलीय न्यायालयों को ये निर्देश दिए हैं :-

"ऐसा लगता है कि ऊपर बताए गए लाभदायक विधि को नज़रअंदाज़ कर दिया गया है तथा न्यायाधीश भी विधि के इस नियम को लगभग भूल गए हैं। इसलिए, वाद से विदा होने से पूर्व, इस न्यायालय को लगता है कि अगर विचारण न्यायालयों एवं अपीलीय न्यायालयों के लिए चेतावनी नहीं लिखी गई, तो मैं अपना कर्तव्य निभाने में विफल हो जाऊंगा। इस न्यायालय के महानिबंधक

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

(रजिस्ट्रार जनरल) को निर्देश दिया जाता है कि वे इस निर्णय की प्रति उत्तर प्रदेश के सभी जिला न्यायाधीशों को भेजें, जो बदले में इस आदेश की प्रति अपने अधीनस्थ सभी न्यायिक अधिकारियों के बीच पहुँचाना सुनिश्चित करेंगे तथा इस निर्णय का सख्ती से पालन सुनिश्चित करेंगे। राज्य के जिला न्यायाधीशों को भी निर्देश दिया जाता है कि वे हर महीने सभी न्यायालय, यानी विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय से आख्या (रिपोर्ट) मांगें जो ऐसे मामलों को देखते हैं एवं बताएं कि कितने मामलों में अभियुक्त को ऊपर बताए गए नियमों का लाभ दिया गया है। जिला न्यायाधीशों को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे हर महीने होने वाली बैठक में ऐसे मामलों की व्यक्तिगत रूप से निगरानी करें। संबंधित जिला न्यायाधीश, महानिबंधक को हर महीने यह विवरण भेजेगा कि विचारण न्यायालय/अपीलीय न्यायालय ने कितने मामलों में अभियुक्त को ऊपर बताए गए लाभदायक विधि का फायदा दिया है। इस आदेश की एक प्रति तुरंत पालन सुनिश्चित करने के लिए महानिबंधक के समक्ष रखी जाए।"

22. इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने महाराष्ट्र राज्य बनाम जगमोहन सिंह कुलदीप सिंह आनंद (2004) 7 एससीसी 659 में अपीलकर्ताओं को अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ दिया है तथा निम्नानुसार टिप्पणी की है :-

"अभियुक्त की तरफ से उपस्थित हुए विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि दुर्घटना वर्ष 1990 की है। सभी लोग पढ़े-लिखे और पढ़ोसी हैं। इसलिए विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की कि अभियुक्त को अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ दिया जाए। अभियुक्त की तरफ से की गई प्रार्थना यथोचित लगती है। दुर्घटना

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

दस वर्ष से ज़्यादा पुरानी है। विवाद पड़ोसियों के बीच जल निकासी के एक छोटे से मुद्दे पर हुआ था। दुर्घटना गुस्से में हुई थी। सभी लोग पढ़े-लिखे थे तथा दूर के रिश्तेदार भी थे। दुर्घटना ऐसा नहीं है कि अभियुक्त को कारावास का दण्ड दिया जाये। हमारी राय में, यह एक उपयुक्त मामला है, जिसमें अभियुक्त को अच्छे बर्ताव के लिए एक वर्ष का बंधपत्र भरने का निर्देश देकर, परिवीक्षा पर छोड़ दिया जाना चाहिए।"

23. सीताराम पासवान एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एआईआर 2005 एससी 3534 मामले में अभियुक्त/अपीलकर्ता को परिवीक्षा अधिनियम का लाभ देना वांछनीय बताया गया है, इसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है :-

"अपनी विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए, न्यायालय को मामले की परिस्थिति पर विचार करना होगा, अपराध की प्रकृति तथा अपराधी के चरित्र पर विचार करना होगा। अपराध की प्रकृति पर विचार करते समय, न्यायालय को अपराध की गंभीरता, व्यथित पर अपराध के असर को वास्तविक रूप से देखना होगा। अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अभियुक्त को मिलने वाला लाभ प्रावधान में दिए गए सीमा के अधीन है तथा "कदाचित" शब्द साफ़ तौर पर बताता है कि अपराध की प्रकृति तथा अपराधी के चरित्र और मामले की सम्पूर्ण परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 3 या 4 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करके अपराधी को छोड़ने का अधिकार न्यायालय के पास है। अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत शक्ति, न्यायालय के पास तब आती हैं जब कोई व्यक्ति किए गए अपराध का

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

दोषी पाया जाता है, जो कि मृत्यु या आजीवन कारावास का दण्ड न हो। इस शक्ति का प्रयोग न्यायालय तब कर सकते हैं, जब कोई व्यक्ति दोषी पाया जाता है और अगर न्यायालय को लगता है कि मामले की परिस्थिति, जिसमें अपराध की प्रकृति तथा अपराधी का चरित्र शामिल है, को देखते हुए आरोपी को लाभ दिया जाना चाहिए, तो न्यायालय इस शक्ति का प्रयोग अपीलीय या पुनरीक्षण चरण पर भी कर सकता है और यह न्यायालय, भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपील सुनते समय भी कर सकता है।"

24. यह भी ध्यान देने वाली बात है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य के मामले में एआईआर 2017 एससी पृष्ठ 660** पर निम्नलिखित टिप्पणी की है :

"20-.....रतन लाल बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1965 एससी 444 में, माननीय न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने बहुमत की ओर से बोलते हुए, इस प्रकार राय व्यक्त की :-

"यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार के आधुनिक उदारवादी प्रवृत्ति की तरक्की में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत की पहचान का नतीजा है कि फौजदारी विधि का उद्देश्य, किसी अपराधी को दण्ड देने से ज़्यादा उसे सुधारना है। मोटे तौर पर यह अधिनियम 21 वर्ष से कम उम्र के अपराधियों तथा उससे ज़्यादा उम्र के अपराधियों और उन अपराधियों में फर्क करता है, जिन्होंने मृत्यु या आजीवन कारावास के दण्ड वाला अपराध कारित किया है एवं जो कम गंभीर अपराध के दोषी हैं। जबकि 21 वर्ष से ज़्यादा उम्र के अपराधियों

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

के मामले में, न्यायालय को यह पूरी छूट है कि वह उनकी भर्त्सना करके या सदाचार की परीक्षा पर छोड़ दे, जो अधिनियम के उपयुक्त प्रावधान में दी गई शर्त के अधीन हो। 21 वर्ष से कम उम्र के अपराधियों के मामले में, न्यायालय को यह आदेश दिया जाता है कि वह उन्हें कारावास की सज़ा न दे, जब तक कि मामले की परिस्थितियां को देखते हुए वह इस बात से संतुष्ट न हो जाएँ; जिसमें अपराधियों के अपराध की प्रकृति तथा उनका चरित्र शामिल है। अधिनियम की धारा 3 और 4 के तहत उनसे निपटना वांछनीय नहीं है।”

25. यह कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **जगत पाल सिंह एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एआईआर 2000 एससी 3622** के मामले में, अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 323, 452, 506 के अंतर्गत दोषी ठहराए जाने के निर्णय को बरकरार रखते हुए, परीक्षा का लाभ दिया है तथा अभियुक्तों को छह महीने की अवधि के लिए सदाचार और शांति बनाए रखने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष बंधपत्र भरने पर छोड़ दिया गया है।
26. यह ध्यान देने वाली बात है कि यह घटना **26.03.1997** को हुई थी। अभियुक्त-अपीलकर्ता, **सलीम उर्फ कालिया**, लगभग **29 वर्षों** से इस विधिक लड़ाई की मुश्किलों का सामना कर रहा है। अभिलेख (रिकॉर्ड) के अनुसार, अपीलकर्ता के विरुद्ध कोई पूर्व आपराधिक पृष्ठभूमि नहीं है। यह ध्यान देने वाली बात है कि यह घटना 26.03.1997 को हुई थी। अभियुक्त-अपीलकर्ता, सलीम उर्फ कालिया, लगभग 29 वर्षों से इस विधिक लड़ाई की मुश्किलों का सामना कर रहा है। अभिलेख के अनुसार, अपीलकर्ता के विरुद्ध कोई पूर्व आपराधिक पृष्ठभूमि नहीं है।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

27. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए तथा यह देखते हुए कि सह-अपीलकर्ता अज़मत को उसकी उम्र और साफ़ पृष्ठभूमि की वजह से विचारण न्यायालय ने पहले ही परीक्षा का लाभ दे दिया था, मेरा मानना है कि अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 के प्रावधानों का लाभ जीवित बचे हुए अभियुक्त/अपीलकर्ता सलीम को भी मिलना चाहिए।
28. ऊपर दी गई बात को ध्यान में रखते हुए, अपीलकर्ता **सलीम उर्फ कालिया** की सज़ा बरकरार रखी जाती है; लेकिन, सज़ा में बदलाव किया गया है। दी गई कारावास की सज़ा काटने के बजाय, उसे अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ दिया जाता है। उसे जिला परीक्षा अधिकारी/विचारण न्यायालय के समक्ष 10,000/- रुपये का स्वीय बंधपत्र तथा उतने ही रूपए के दो प्रतिभुओं को देने का निर्देश दिया जाता है, दो वर्ष तक शांति और सदाचार बनाए रखने के वचन के साथ।
29. यह भी निर्देश दिया जाता है कि अपीलकर्ता विचारण न्यायालय में प्रतिकर के तौर पर 5,000 रुपये जमा करे। विचारण न्यायालय घायल/शिकायतकर्ता अमरीश कुमार सोनकर के पक्ष में यह धनराशि जारी करेगा। अगर वह ज़िंदा नहीं है, तो यह धनराशि उसके विधिक उत्तराधिकारियों को जारी कर दी जाएगी।
30. बंधपत्र की ऊपर बताई गई किसी भी शर्त का उल्लंघन होने पर, अपीलकर्ता सलीम उर्फ कालिया को विचारण न्यायालय द्वारा दी गई मूल सज़ा को काटने के लिए हिरासत में लिया जाएगा।
31. ऊपर दिए गए बदलाव के साथ, तत्काल आपराधिक अपील को **आंशिक स्वीकृति** दी जाती है।
32. आदेश की प्रमाणित प्रति भी, संबंधित न्यायालय को पालन के लिए भेजी जाये।

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



33. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि इस आदेश को, अनिवार्य रूप से पालन हेतु, संबंधित न्यायालय को बताए।
34. अगर कोई निचली न्यायालय का अभिलेख (रिकॉर्ड) हो, तो उसे भी संबंधित जिला न्यायालय को वापस भेज दिया जाए।

17 मार्च, 2026

हसीन यू

(न्यायमूर्ति प्रमोद कुमार श्रीवास्तव)

अस्वीकरण:

अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।